IJAER/January-February 2016/Volume -5/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Researc

भारत भूषण अग्रवाल के काव्य के विविध स्वर

दामोदर लाल मीना

व्याख्याता हिन्दी राजकीय महाविद्यालय

करौली राजस्थान

सार

तार सप्तक के कवि भारतभूषण अग्रवाल का जन्म 3 अगस्त, 1919 को तुलसी–जयंती के दिन उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के सतघड़ा मोहल्ले में हुआ। उन्होंने आरंभिक शिक्षा मथुरा और चंदौसी में पाई, फिर उच्च शिक्षा आगरा और दिल्ली में पूरी की। 1941 में नौकरी की तलाश में कलकत्ता गए जहाँ पहले एक कारखाने में काम किया फिर व्यावसायिक–औद्योगिक संस्थानों में उच्चपदस्थ कर्मचारी बने। बाद में इलाहाबाद की प्रतीक पत्रिका से संबद्ध हुए और 1948–59 तक आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी रहे। इसके उपरांत 1960–74 तक साहित्य अकादेमी, दिल्ली के उपसचिव के रूप में कार्य किया। 1975 में शिमला के उच्चतर अध्ययन संस्थान से विजिटिंग फेलो के रूप में संबद्ध हुए और यहीं 23 जून 1975 को उनका निधन हो गया।

वह बचपन से ही काव्य–कला में प्रवीण होने लगे थे और साहित्यिक गतिविधियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते थे। उनका पहला काव्य–संग्रह श्छवि के बंधनश 1941 में और दूसरा काव्य–संग्रह जागते रहो 1942 में प्रकाशित हुआ। 1943 में प्रकाशित श्तारसप्तकश में सात नए महत्त्पूर्ण युवा कवियों में से एक के रूप में उन्हें शामिल किया गया। ओ अप्रस्तुत मन (1958), अनुपस्थित लोग (1965), एक उठा हुआ हाथ (1976), उतना वह सूरज है (1977), बहुत बाकी है (1978) उनके अन्य काव्य–संग्रह है। हास्य–व्यंग्य, लघुमानव की प्रतिष्ठा, यथार्थ के प्रति आग्रह, क्षणबोध, मध्यमवर्गीय संघर्ष, नियति के प्रति विद्रोह आदि उनकी कविता का मूल स्वर है। कवि लीअर के लिमेरिक से प्रभावित होकर उन्होंने तुक्तकों की भी रचना की जिसका संग्रह कागज के फूल में हुआ है। अरुण कमल ने उन्हें नगरीय जीवन का पहला सजग कवि कहा है।

भूमिका

भारत भूषण अग्रवाल नागर जीवन के पहले सजग कवि थे। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं, जटिलताओं को एक नई जीवंत भाषा के साथ प्रस्तुत किया। आगे उन्होंने कहा कि वे उन कवियों में थे, जिन्होंने कवियों के कठिन जीवन को भी अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया। भारत जी ने कविता की सृजन

प्रक्रिया पर गहराई से विचार किया था। उन्होंने मिथकों की पुनर्व्याखा भी बिलकुल निराले ढंग से की। अन्विता अब्बी ने उन्हें अपने संपूर्ण परिवार के रचनाकार के रूप में याद करते हुए कहा कि उन्होंने अपने जीवन को ही नहीं अपने परिवार के सभी सदस्यों की भी समर्थ रचना की।

कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने गद्य विधा में भी योगदान किया है। सेतुबंधन, अग्निलीक, और खाई बढ़ती गई उनके प्रमुख नाट्य संग्रह हैं। लौटती लहरों की बाँसुरी उनका उपन्यास है और उनकी कहानियों का संकलन आधे–आधे जिस्म शीर्षक से प्रकाशित है। प्रसंगवश में आलोचनात्मक लेख, कवि की दृष्टि में निबंध और लीक–अलीक में ललित–निबंधों का संकलन है। उनकी संपूर्ण रचनाओं का प्रकाशन उनकी धर्मपत्नी बिंदु अग्रवाल के संपादन में भारतभूषण अग्रवाल रचनावली के चार खंडों में किया गया है।

उतना वह सूरज है काव्य–संग्रह के लिए उन्हें 1978 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनकी स्मृति में प्रति वर्ष युवा कविता का चर्चित और विवादित भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

यदि व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को खण्डित करके समाज पनपता है तो यह उन्हें काम्य नहीं है। व्यक्ति चाहे लघुमानव ही क्यों न हो, व उसकी सुरक्षा तथा उसके स्वतंत्र विकास के पक्षधर हैं। आडंबरों से सुशोभित समाज में कुंठा रहित इकाई या अकेले व्यक्ति को वे महत्त्व देना चाहते हैं। इसे वह आधुनिक समाज का महत्त्वपूर्ण लक्षण मान लिखि कागद कोरे में लिखते हैं संस्कारवान होने की क्रिया को ही मैं आधुनिक मानता हूँ । कवि का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जिसमें व्यक्ति का महत्त्व होगा, व्यक्ति अपने अस्तित्व व अपनी वैयक्तिक विशेषताओं पर गर्व कर सकेगा। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर वह समाज के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देगा। समाज के निजी व्यक्तित्व व वैशिष्ट्य की रक्षा करने की आकांक्षा रखने वाले अज्ञेय मानववादी हैं। मानव व मानव के बीच की खाई को वे सेतु से पाट देना चाहते हैं।

नयी काव्यभाषा प्रयोगशीलता में सहायक है। पहले से प्राप्त साधन भाषा में नया और बड़ा अर्थ भरने में सहायक हैं। यही चुनौती है अज्ञेय जैसे आधुनिक कवि के सामने । फिर यह कविता श्वाचिकश से अधिक श्मुद्रितश कविता है। इसलिए मुद्रण चिह्न तक भाषा का काम देने या करने लगते हैं। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि जीवन में जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वह कल्पना में जाकर सतत मंथन अथवा चिंतन से प्रेरित होता है। इस क्रिया से जो अवधारणा बनती है, वह ही विचार है। विचार हमारे मन–मस्तिष्क में उत्पन्न और विलुप्त होते रहते है। इनकी प्रकृति विद्युत के समान है जो क्षण में दृश्य

और अदृश्य होती रहती है परंतु इनका नाश नहीं होता। विचारों का अस्तित्व हमारी स्मृति में विद्यमान रहता है। अनेकों विचार क्षण–प्रतिक्षण प्रकट होते हैं किन्तु सभी ग्रहणीय हों, यह आवश्यक नहीं है। कुछ विचार स्वीकार करने योग्य होते हैं और कुछ नहीं।

इसी प्रकार श्दृष्टिश के अर्थ को समझना भी आवश्यक है। दृष्टि का साधारण अर्थ है– श्देखना श । हम तभी देख सकते हैं जब हमारे पास अपनी दृष्टि अर्थात आंखें होती हैं। दृष्टि की साधारण परिभाषा के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है– हमारी दृष्टि हमारी इंद्रियों में सबसे अधिक पूर्ण और आनंददायिनी है। चित्त को अधिकांश प्रकार के भावों से यह पूर्ण करती है, दूर से दूर की वस्तुओं की बातचीत करती है और अपने नियत आनंद के अनुभव से बिना थके और संतुष्ट हुए सबसे अधिक काल तक अपनी क्रिया में तत्पर रहती है। इस कथनानुसार दृष्टि, वस्तुओं से हमारा साक्षात्कार कराती है। साथ ही हमारे ह्रदय को भाव–पूर्ण कर हमें सुख भी पहुंचाती है। परंतु जिस दृष्टि की मैं चर्चा कर रही हूं वह साधारण चक्षुओं से भिन्न है।

वर्तमान में वस्तुओं, पदार्थों अथवा वस्तुस्थितियों का दृष्टि के द्वारा बोध होता है और वह कल्पना और बुद्धि के सहयोग से भविष्य में भी बनी रहती हैं। विचार एवं दृष्टि के संदर्भ में विश्लेषण से यह दृष्टिगत है कि विचार और दृष्टि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अपने आस–पास उपस्थित किसी भी वस्तु या स्थिति से जब हमारा संपर्क होता है तो सबसे पहले हमारे मन–मस्तिष्क में उससे संबंधित किसी विचार का जन्म होता है। इन्हीं विचारों पर दृढ़ता के साथ निरंतर चिंतन–मनन करते रहने से दृष्टि का निर्माण होता है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना विचार और अपनी दृष्टि होती है। उदाहरण के रूप में साधारण मनुष्य की दृष्टि में एक पुष्प, पुष्प के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कोई इसे स्वयं की सज्जा का साधन मानता है तो कोई ईश्वर की अर्चना का । एक वैज्ञानिक के लिए तो यह प्रयोग की वस्तु है। परंतु एक कवि की दृष्टि इन सबसे भिन्न होती है। इन्हीं पुष्पों को वह अपनी विशेष दृष्टि से विभिन्न उपमानों के रूप में प्रस्तुत करता है ।

भारत सदा से ही महान चिंतकों, विचारकों, मनीषियों, दार्शनिकों, वैयाकरणों, कलाकारों तथा साहित्यकारों का देश रहा है। इनकी वैचारिक दृष्टि के लिए भारत सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। यह परंपरा वैदिक साहित्य से प्रारम्भ होकर अद्यतन दृष्टव्य है। भारतीय चिंतन परंपरा के नेपथ्य में झांके तो हमारे विचारों को दृष्टि प्रदान करने वाले वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, भगवद्गीता, कुरान, बाइबिल आदि महान रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं। इनके मूल में मानव मात्र के कल्याण की भावना निहित है। यद्यपि ये सभी

धार्मिक ग्रंथ हैं तथापि ये हमारे सद्–विचार और ज्ञान का अथाह भंडार हैं। आज भी हम इनके प्रभाव से अलग नहीं हो सके हैं।

सत्य की प्राप्ति और उसका अनुसंधान, भारतीय वैचारिकता का महत्वपूर्ण अंश रहा है। सत्य की जिज्ञासा साधारण मनुष्य से लेकर साधु–संतों, ज्ञानियों, दार्शनिकों आदि सभी को रहती है। हमारे वेद, उपनिषद, पुराण और शास्त्रों में सत्य के स्वरूप की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हुई है। इनसे ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य, तप और सत्य के ६६ साधक को ही परमात्मा का ज्ञान हो सकता है।

वस्तुतरू हमारा समस्त चिंतन सत्य तक पहुंचने का प्रयास है। हमारे मन में उठने वाली प्रत्येक जिज्ञासा की शांति सत्य के अनावरण से ही होती है। अनेक प्रश्नों और शंकाओं के समाधान हेतु भले ही ऋषि–मुनियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने भिन्न– भिन्न मार्ग अपनाएं हों, परंतु लक्ष्य एक ही रहा– सत्य की प्राप्ति। जहां साधु–संत और ऋषि–मुनि सत्य के लिए अनेक प्रकार से साधना करते हैं वहीं वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग कर सत्य की पुष्टि करता है । कवि भी कविता में अन्वेषण करता है और सत्य की खोज करता है। वे कहते हैं– खोज में जब निकल ही आया सत्य तो बहुत मिले। पर तुम – नभ के तुम कि गुहा–गवर गुहा – गहवर के तुम, मोम के तुम, पत्थर के तुम – तुम किसी देवता से नहीं निकलेरू तुम मेरे साथ मेरे ही आंसू में गले, मेरे ही रक्त पर पले अनुभव के दाह पर क्षण–क्षण उकसती मेरी अशमित चिता पर तुम मेरे ही साथ जले तुम– तुम्हें तो भस्म हो फिर मैंने अपनी भभूत में पाया । अंग रमाया । – तभी तो पाया। खोज में जब निकल ही आया सत्य तो बहुत मिले – एक ही पाया ।

भारत भूषण अग्रवाल के काव्य के विविध स्वर

भारत भूषण अग्रवाल एक सच्चे रचनाकार थे। उन्होंने अपनी कविता में जितने सवाल उठाए हैं वे सभी अपने आप में क्रांतिकारी और साहसिक सवाल हैं। उनकी पूरी कविता कवि के मन की रूढ़ियों से ही नहीं बल्कि समाज की सभी रूढ़ियों से लड़ती है। अपने को निष्कवच करते हुए वे हमेशा एक नैतिक आक्रोश प्रस्तुत करते हैं। इससे पहले साहित्य अकादेमी के सचिव के. श्रीनिवासराव ने कहा कि कोरोना महामारी के कारण इस आयोजन में देर हुई है और अब हम इसे आभासी मंच पर कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि भारत भूषण अग्रवाल ने तमाम तरह के तनावों और संघर्ष के बावजूद कविता के साथ–साथ नाटक, निबंध, आलोचना, कहानी, उपन्यास, बाल साहित्य एवं अनुवादों में अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा को सामने रखा। भारत जी बहुआयामी व्यक्तित्व के रचनाकार थे।

भारत जी ने परंपरा से खुद को जोड़ा और भारतीय परंपरा का संवर्धन किया। प्रख्यात कवयित्री सविता सिंह ने उनके एब्सर्ड दार्शनिक पक्ष को उजागर करते हुए कहा कि उन्होंने इसी पक्ष को अपनी कविता की गहराई बनाया। उन्होंने अपने कथ्य को प्रस्तुत करने के लिए अलग शैली और शिल्प तैयार किया। वे समाज के विभिन्न पक्षोंध्पात्रों के अलग–अलग व्यक्तित्वों को बेहद सूक्ष्मता से पकड़कर प्रस्तुत करते रहे। कवि एवं आलोचक पंकज चतुर्वेदी ने उनके व्यंग्य की क्षमता का आकलन करते हुए कहा कि भारत भूषण अग्रवाल परंपरा का आदर करते हुए भी परंपरा के खिलाफ हमेशा व्यंग्य की नजर से देखते हैं। वे ऐसी पैनी नजर इसलिए रख पाए, क्योंकि वे खुद एक बड़े आत्मालोचक थे। उन्होंने उनके तुक्तकों का उल्लेख करते हुए कहा कि विनोद के साथ विरोध करना उनकी पहचान थी। उनकी कविताओं में जो संशय है वही उन्हें श्रेष्ठ बनाता है। आलोचक ओम निश्चल ने उनकी प्रतिभा का सही विशलेषण न होने की बात करते हुए कहा कि वे छंद के साथ–साथ नई कविता के बड़े कवि थे। उन्होंने मिथकों को नए तरीके से चुनौतियाँ दीं। कथाकार ममता कालिया ने उन्हें अपने चाचा और एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में याद किया। उन्होंने कहा कि भारत भूषण जी ने स्वयं को ही निर्मित नहीं किया बल्कि अपने परिवार का भी निर्माण किया। भारत जी हास्य कवि नहीं बल्कि व्यंग्य के कवि थे। यह उनकी प्रतिभा ही थी कि उन्होंने अपने सभी समकालीन रचनाकारों और उनकी रचनाओं पर व्यंग्य से भरे तुक्तक लिखे।

प्रयोगवाद व नई कविता की काव्यधारा में भारत भूषण अग्रवाल का नाम प्रमुख है। आत्मविश्वास और काव्य शिल्प की निराली भंगिमा के कारण अपना विशिष्ट है। जीवन के प्रति अशेष प्रेम, लालसा, अपनी अटूट विश्वसनीयता के कारण भारत भूषण का काव्य जन–जन में स्पंदन उत्पन्न करने में समर्थ है–

इसलिए मौन हो जाता हूँ, स्वीकार करो यह विदा

आज आखिरी बार

मत समझो मेरी नीरवता को व्यथा–जात

या मेरा निज पर अनाचार।

मैं आज बिछुड़ कर भी सचमुच सुखी हुआ मेरी रानी!

इतना विश्वास करो मुझ पर

मैं सुखी हूँ कि तुमने अपनी नारी–जन सुलभ चातुरी से

बिखरा दी मेरी नादानी

पानी–पानी करके सत्वर

मैं सुखी हूँ कि इस विदा–समय भी नहीं नयन गीले तेरे,

मैं सुखी हूँ कि तुमने न बँटाए कभी अलभ्य स्वप्न मेरे,

मैं सुखी हूँ कि कर सकीं मुझे तुम निर्वासित यों अनायास,

मैं सुखी हूँ कि मेरा प्रमाद बन सका नहीं तेरा विलास।

मैं सुखी हूँ कि – पर रहने दो, तुम बस इतना ही जानो

मैं हूँ आज सुखी,

अन्तिम बिछोह, दो विदा आज आखिरी बार ओ इन्दुमुखी !

भारतीय चेतना मानवीय प्रेम पर आधारित है। प्यार और दर्द की इसी सम्पदा से वे अपनी वैयक्तिक – पीड़ा को भुलाकर दूसरों की मंगलमयता की कामना करते हैं। उनमें व्यक्ति के प्रति समर्पण की ऐसी भावना है जिससे उन्हें दुख रूपी विष को भी पचाने मे भी संकोच नहीं होता। उनकी इस दृष्टि में लोक–कल्याण की भावना सफलीभूत होती है।

व्यक्ति के प्रति दया, प्रेम, करुणा, और सेवा की भावना उनके काव्य में विद्यमान हैं। उन्होंने जीवन के दुखों को निकट से देखा और भोगा । जीवन के इन्हीं यथार्थ सत्यों से उन्हें दृष्टि मिली है। वे नहीं चाहते कि जो दुख और कष्ट उन्होंने भोगे, वह किसी भी अन्य व्यक्ति को भोगना पड़े। कविता की इन पंक्तियों में उनकी यही मंगल कामना झलकती है– जियो उस प्यार में जो मैंने तुम्हें दिया है, उस दुख में नहीं जिसे बेझिझक मैंने पिया है । उस गान में जियो जो मैंने तुम्हें सुनाया है, उस आह में नहीं जिसे मैंने तुम से छिपाया है

सौंदर्य का अनुभव मानव जीवन को सदा से आकर्षित करता रहा है। सौंदर्य का ज्ञान हमें हमारी इंद्रियां कराती हैं। इनसे होकर सौन्दर्य हमारे मन तक पहुंचता है। यह सौंदर्य हमें रंग, रूप, आकार, स्पर्श और प्रिय लगने वाले व्यवहारों से प्राप्त होता है। व्यवहारों में भी तभी सौंदर्य होता है जब वे मधुर हों अन्यथा

रूप, रंग, वर्ण की सुंदरता भी कुरूप लगती है। कहने का आशय यह है कि सुंदर वही होता है जिसकी हम कामना करते हैं। हमारी चेतना में प्रसन्नता, इच्छा, आनंद, ईर्ष्या, उल्लास, प्रेम, वात्सल्य आदि भावनाएं जागती हैं। वस्तुतरू सौंदर्य को समझने के लिए उसकी अवधारणा को समझना समीचीन है।

परंतु रामविलास शर्मा इस आपत्ति का उत्तर देते हैं– कला में कुरूप विवादी स्वरों के समान हैं जो राग के रूप को निखारते हैं। वीभत्स का चित्रण देखकर हम उससे प्रेम नहीं करने लगतेय हम उस कला से प्रेम करने लगते हैं जो हमें वीभत्स से घृणा करना सिखाती है। कहने का अर्थ है कि सौन्दर्य का कार्य सुख प्रदान करना है। वस्तुत सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन दर्शन के एक अंग के रूप में होता है। सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य और उसकी अनुभूतियों का व्यापक वर्णन करता है। यह मानव के जीवन में, कलाओं में और प्रकृति में निहित सौंदर्य की व्याख्या करता है। सौंदर्य की सत्ता के विषय में एक प्रश्न यह भी है कि सौंदर्य बाह्य होता है या आंतरिक । तात्पर्य यह है कि सौंदर्य आत्मगत है या वस्तुगत।

प्रकृति सौंदर्य की भावना तो चेतना की विषयीगत अवस्था ही नहीं बल्कि प्रकृति वस्तुओं और मनुष्य के सामाजिक जीवन में प्राप्त निश्चित विषयगत गुणों के कारण होती है। अतः मार्क्सवादी सौंदर्य को वस्तुगत रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सौंदर्य की सत्ता को लेकर दार्शनिकों में वस्तुवाद और भाववाद दो दृष्टि मिलती हैं। कभी–कभी सौंदर्य को विलासिता के रूप में भी देखा जाता है जैसा कि रीतिकालीन और छायावादी कविताओं में प्रायरू मिलता है। परंतु एक साहित्यकार के रूप में सौंदर्य के संबंध में अज्ञेय इसे केवल विलासिता नहीं मानते बल्कि उनकी दृष्टि में सौंदर्य ऐसे भाव हैं जिसमें दूसरों के कल्याण की भावना होती है।

इस संबंध में रामदेव शुक्ल का कथन ध्यातव्य है – परिपक्व दृष्टि सम्पन्न कलापारखी का सौंदर्य बोध हिन्दी कविता को अज्ञेय के पास आकार ही मिला छायावाद की अप्सरा को यथार्थ की धरती पर उतार कार उसका पार्थिव श्रृंगार करने और उसे पारखी दृष्टि के नैवेद्य का दान करने का काम अज्ञेय ने ही किया । शुक्ल जी का यह कथन अज्ञेय के सौंदर्यबोध – दृष्टि को प्रकट करता है। अज्ञेय के सौन्दर्य बोधीय दृष्टि उनकी कविताओं में दृष्टिगत है। उनकी कविताओं में सौंदर्य की छटा हर कहीं दिखाई देती है चाहे वह प्रकृति का सौंदर्य हो, नारी का सौंदर्य हो, लोकजीवन का हो अथवा दर्शन का सौंदर्य हो ।

निष्कर्ष

व्यक्ति के अंतर्संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए वे नूतन शिल्प का विधान करते हैं। पुराने उपमानों को हटाकर नए उपमानों का संयोजन करते हैं। वे शब्दों में चमत्कार और सारगर्भित अर्थ को महत्तव देकर हिन्दी साहित्य को नया कलेवर देने में सक्षम रहे हैं।

हमारे चारों ओर फैली प्रकृति के सौन्दर्य की छटा हमें अपनी ओर खींचती रहती है। जन्म के साथ ही प्रकृति और व्यक्ति एक दूसरे के सानिध्य में आते हैं और जीवनपर्यंत ये साथ बना रहता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि व्यक्ति का जीवन प्रकृति के बिना मुश्किल ही नहीं है बल्कि असंभव है। हम अपनी श्वास से लेकर भोजन, वस्त्र, निवास आदि सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति के माध्यम से ही करते हैं। प्रकृति ने मानव जीवन को संभव बनाया है। जल, वायु, अग्नि, भूमि, आदि सब प्रकृति की ही देन हैं। मनुष्य के जीवन प्रारम्भ से वह प्रकृति के सौंदर्य से प्रभावित रहा। सूर्य देव, धरती माता, पवन देव, अग्नि देव ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जो हमें व्यक्ति के साथ प्रकृति की घनिष्ठता का बोध कराते हैं।

शहरी सभ्यता ने व्यक्ति के जीवन में कृत्रिमता भर दी है। कवि शहरी जीवन से दूर प्रकृति के सानिध्य में हरी घास पर अपनी प्रिया के साथ समय व्यतीत करना चाहता है। कवि प्रकृति को जीवन के निकट अनुभव करना चाहता है। इसलिए वो घास की तरह ही नमो, खुल खिलो, सहज मिलो की उपमा दे रहा है। वह प्रकृति के खुले और मुक्त स्वभाव को अपने जीवन में उतारना चाहता है। यहां अज्ञेय की प्रकृति के साथ नए रिश्ते की स्थापना दिखाई देती है।

संदर्भ

1. साहित्य का आत्म–सत्य, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, 2003
2. चिंतन दृष्टि, डॉ.. नंद कुमार राय, बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम, 2011
3. समकालीन दर्शन, बसंत कुमार लाल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम, ण्६६ण
4. भगवद्गीता, डॉ.. राधाकृष्णन, सरस्वती विहार, दिल्ली, सातवां, ण्६८०
5. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम, ण्६६०
6. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, ण्ण्वां, 2००४

7. सबद (कबीर वाङ्मयरू खंड– □), डॉ.. जयदेव सिंह, डॉ.. वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ, 2००७

8. पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां, जगदीश सहाय श्रीवास्तव, ज्ञान भारतीय, द्वितीय, ण्६६८

9. साक्षात्कार, कृष्णदत्त पालीवाल, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, □०ण□

10. आस्था और सौंदर्य, डॉ. रामविलास शर्मा, राज कमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, □००६